ग्राफिक कला में जय झरोटिया का योगदान

पवनेन्द्र तिवारी
सहायक प्रोफेसर, पेन्टिंग
स्वामी विवेकानन्द सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ

प्रो0 जय झरोटिया को सिर्फ ग्राफिक कलाकार कहना सर्वथा उचित नहीं होगा। राजस्थानी रंगो की चमक व पृष्ठभूमि लिए जय झरोटिया का जन्म दिल्ली में सन् 1945 में हुआ। एक साधारण परिवार से आए जय ने दिल्ली के ललितकला महाविद्यालय से सन् 1967 में ललित कला में डिप्लोमा ग्रहण किया। यह वही समय था जब यहां ग्रुप 8 की तैयारियां हो रही थी लेकिन अपने को किसी दल से न जोड़कर उन्होंने स्वतंत्र रूप से कार्य करना पसन्द किया और यही उनकी प्रकृति के अनुरूप भी था। डिप्लोमा करने के पश्चात् वह बाल भवन संग्रहालय की बाल शिक्षा परियोजना से सन् 1971से 74 तक जुड़े रहे। तत्पश्चात् सन् 1974 में ललित कला महाविद्यालय में कला अध्ययन से जुड़ गए।

ललित कला महा विद्यालय दिल्ली के चित्रकला विभाग में प्रोफेसर पद पर कार्यरत – जय झरोटिया को हम "भुलक्कड़" या "अव्यवहारिक" ही कह सकते है। वह वर्तमान सरोकारों को अपनी इच्छा के अनुरूप अतीत और भविष्य से जोड़ते है। इसलिए जय के रेखांकनों को देखना आज में कल को देखना है। जय झरोटिया अपनी स्मृतियों और इच्छाओं के जंगल को कुछ इस तरह ऐच्छिक रूपाकारों, टैक्सचर और रेखाओं मे उजागर करते है। कि दर्शक को वह फंतासी के रहस्यमय वातावरण मे देखा गया जादुई दिवास्वप्न जान पड़ता है। जैसे रेत में धंसी टोपीनुमा, नाव में सवार एक बन्दर, रहस्यमय रंगों की पृष्ठभूमि में चेहरेनुमा पतंग उड़ाते नारी रूपाकार। पतंगों के ढीले धागे रूपाकरों की उंगलियों से बंधे है। नारी रूपाकार स्पष्ट तौर पर स्वयं भी पतंगों क साथ उड़ने को तैयार जान पड़ते है।

प्रो0 जय झरोटिया मानते हैं– "मैं दौड़ते सूरज के रास्ते में अपने सफेद बालों को घोड़े की तरह हिलाता हुआ हवा की तरह गुजर जाऊँगा। मैं चिड़ियों के साथ पेड़ से टूट कर गिर सकता हूँ। मैं स्वयं को हवा और पानी दोनों में मिला लेता हूँ।"

प्रो0 जय के चित्रों में फंतासी, रहस्य अयथार्थवादी वातावरण, यथार्थवादी सी दिखने वाली घटना आदि सब कुछ मिलाकर चित्रित है। एक तरह से जय के चित्रो को अव्यस्थित यथार्थ की सीधी अभिव्यक्ति कहा जा सकता है। फिर भी जय झरोटिया फंतासी के रचनाकार हैं वे आदमी द्वारा आदमी के चेहरे को महसूस करते हुए, आदमी के हाथों मे उसी का चेहरा थमा कर, भागते हुए दिखा सकते है। वे इन चेहरों को कभी ढाल और कभी चांद की तरह भी प्रस्तुत करते है। इन चेहरों के माध्यम से आदमी का वास्तविक रूप दिखता है 'स्पेस' में अकेन्द्रित ये मुखौटे दर्शक को अनगिनत अनुभूतियों से भर देते है।

आकाश में उडते तीर, मन्दिर पर लहराते झंडे, पेड़ के पत्तों का झूलना, चांद की रोशनी, रेत में पड़ी नाव, गलियों में घूमता साँड़, चट्टानाकार दैत्य की ओट में बैठा पंड़ित, नृत्य मुद्रा में साँड़ के सामने गोबर बटोरती लड़की, आक्रामक देहाकार में वहॉ खड़े साँड़ को उपदेश देता ब्राह्मण, हवा में तैरते मुखौटे से बात करती लड़की, मुखौटा पहने घोड़े से संवाद करती औरत, पीतल के कटोरे पर उड़ता पक्षीनुमा मुखौटा, पॉच मानवकार अपने–अपने चांद पर बहस करते हुए, चिड़ियों को पढ़ाता पंड़ित फहराते मुखौटे की छाया में टहलते रोमन सैनिक, चौपड़ खेलते दो हाथ, मुखौटेनुमा मोहरों के साथ और आंखे भींचे जर्जर राजा आदि जय झरोटिया के विषय है।

मानवाकार कभी ठोस रूप में, कभी वर्तुलाकार रूप में, कभी–कभी बेंत के समान पतले आकारों में गढ़े है। पूरा संयोजन नाटक के दृश्य–सा प्रतीत होता है। रूपाकार अपने संयोजन में, परिप्रेक्ष्य को तोड़ते हुए इस प्रकार गुंथे है। जैसे वे मंच पर रखी पड़ी वस्तुएं या नायक–नायिकाएं है। पहाड़, नाव, पेड़, मुखौटा, मछली, मन्दिर, लड़की और साँड़ सभी समानुपात में अभिव्यक्त है। जय के विषय बाह्य दुनियां से चुने है और अपने आन्तरिक मन पर पड़ी प्रवाहमान छाप को नाटकीयता पहनाते हुए इतने ढंग में अभिव्यक्त करते है मानों बिंब हमसे संवाद बनाना चाहता हो।

जय स्वयं बताते है : "सन् 1965 में मैं चकराता गया था। वहां पेड़ों को ध्यान से देखा। वहां मैंने हरे रंग का पक्कापन अत्यंत

तीव्रता से महसूस किया। पेड़ो पर चमकते चांद को भी महसूस किया। तब अक्सर यह होने लगा कि हम यकायक तीन ही रह जाते – चांद, पेड़, और मै। हम इतने दूर कभी नहीं होते जितना दिखाई पड़ते। चांदनी से लबालब मेरा तन, पत्तों की खड़खड़ाहट सुनता मेरा मन और मै वहीं का खड़ा पत्थर–सा जड़। और फिर जब भी मै स्कैच या पेन्टिंग करता तो चांद की जगह खुद–ब–खुद महसूस होती। अक्सर बताने की जरूरत ही नहीं होती– वह अपने आप चित्र में उग जाता या बनाने से पहले ही चमकने लगता।"

जय झरोटिया के मनमौजी व्यंग्यात्मक तैलचित्रों और रेखांकनों के साथ उनका एक और आयाम उनके गीतात्मक छापा चित्र है। उनके प्रयोगात्मक सादृश्य छापों में दर्शक पर सबसे पहले उनके रंगों का प्रभाव पड़ता है। जय के छापों पर उनके राजस्थानी मूल के लोगों के वस्त्रों के चमकदार रंगो का भरपूर परन्तु नियंत्रण के साथ प्रयोग है जो काल्पनिक फंतासी को महान् सौन्दर्य और कलात्मकता प्रदान करने मे अधिक योगदान प्रदान करते है।

अनेक ग्राफिक कलाकार इस माध्यम की शुद्धता में ही उलझे रहे है। अनेक अपने विचारों की दरिद्रता और सादृश्यता को, इस माध्यम को परम तक की ऊँचाई तक उठाने की आड़ में ढके रखते हैं। जय के छाप इस प्रकार की रीतिवादि श्रेणी में नही आते है। यद्यपि वह शायद उस रहस्य का सूजन करने मे सफल होते है जोकि उन लोगों की आदत बन जाता है, जिनमें कल्पना भाक्ति का अभाव होता है।

जय के अनुसार उनका ऐसा दृढ़ विश्वास है कि रहस्य को खोजा नही जा सकता। वह हमेशा रहस्य ही बना रहता है। उनके शब्दों मे "जब भी मैने इसे हल करने की कोशिश की, मैं भी इसका हिस्सा बन गया। मै अपने आप के लिए अजनबी बन गया और एक घटना का साक्ष्य बन गया। इसी घटना को दर्शाना ही मेरी कला है।"

जय झरोटिया एक कलाकार ही नही है बल्कि एक दार्शनिक भी है। इसी दार्शनिकता से सराबोर होकर वह कहते हैं, "मैं कभी–कभी खिड़की के सहारे खड़ा हो जाता हूँ और अंतरिक्ष में लटके दृष्टिगता रहस्य मे खो जाता हूं। तभी अचानक मैं अपने आप को स्वयं एक अनजान व्यक्ति के रूप में पाता हूँ।"

उनके छापों मे साधारणतः सरल रंगीन स्याहियों का ही प्रयोग है और उन्हीं रंगों को एक दूसरे के ऊपर छापते हुए रंगत (टोन) का प्रभाव पाया गया है। इसी प्रक्रिया में अति विशिष्ट बुनावट और प्रभाव प्रकट होते जाते है। जय अपने संयोजन एक छोटी इकाई से आरम्भ करते है और एक–एक करके अनेक इकाईयां उसमें जोड़ते जाते है। और एक अद्भुत छापा तैयार होता जाता है। इसका उदाहरण उनके सिल्क स्क्रीन छापा "मिस्ट्री" (1984) में स्पष्ट देखा जा सकता है।

जय कहते है, "चित्र कोई रंगों का एक डिब्बा नहीं है। मैं रंगों का प्रयोग एवं कलात्मक बोध के साथ करता हूँ न कि सम्मिलित रीति से। प्रक्रिया हमेशा एक महत्वपूर्ण घटक होता है।"

कलाकार द्वारा अभिव्यक्ति का माध्यम बदलना संपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए छटपटाहट है। इस खोज मे कलाकार की प्रतिभा को चुनौती भी मिलती है, तो नये आयामों को उजागर करने मे सहायता भी । सिरेमिक्स में गढ़े गये जय के शिल्प ऐसे ही उदाहरण है। रेखांकन, छापांकन और चित्रांकन के बाद सिरेमिक्स में वे अपनी कलात्मक अनुभव को द्विआयामी सीमा से मुक्त कर त्रिआयमी जगत् में ले आये। उनके कलात्मक सिरेमिक्स शिल्प पर भी रेखांकन और छापांकन का प्रभाव है। दिल्ली में ग्रुप ऍट् जिन उद्देश्यों को लेकर कला जगत में अस्तित्व में आया उन्हें पूरा करने में उसने अथक प्रयास किये। छपाई की मशीन बनाने से लेकर पूरे भारतवर्ष के कलाकारों से ग्राफिक प्रिंट एकत्र करने और उनकी लगातार प्रदर्शनियां आयोजित करने और पुनः कृतियों को वापस भेजने तक के काम के साथ–साथ कृष्ण रेड्डी, सोमनाथ होर, कंवल व देवयानी कृष्ण सरीखे कलाकारों के ग्राफिक चित्रों को प्रदर्शनी के विशेष अनुभाग में रखकर ग्राफिक की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति से कलाकार तथा आम जनता को अवगत कराने की आवश्यकताओं पर ग्रुप 8 ने विशेष ध्यान दिया। अतः ग्रुप 8 अपने उद्देश्य में काफी हद तक सफल रहा।

सभी मूल सदस्य कलाकारों में से कुछ ही कलाकारों ऐसे है जो अब तक ग्रुप के साथ क्रियाशील है। इनके अतिरिक्त परमजीत सिंह तथा कृष्ण आहूजा भी कुछ समय बाद इस ग्रुप के सदस्य बने। उनका योगदान भी काफी सराहनीय रहा है साथ ही रिचर्ड बाथोंलोमियो का नाम भी भुलाया नही जा सकता। वे एक ऐसे कला–समीक्षक थे। जिन्होनें न केवल ग्रुप के कलात्मक प्रयासों को समझा बल्कि ग्राफिक कला की तकनीक को भी भली–भांति समझकर अपनी समीक्षाओं के माध्यम से आम जनता को भी समझाने का प्रयास किया। ग्रुप आठ के कलाकार एक टीम ने होकर विभिन्न प्रतिभा लिए हुए है। वास्तव में ग्रुप 8 स्वभाव से पंचमेल है अतः वह सौन्दर्य के एक मत लक्ष्य का प्रतिनिधित्व नही करते है। उनकी सोच को ढालने के लिए आधुनिक और वर्तमान चलन का अत्यधिक प्रभाव रहा है। जिनमें दो प्रभाव 'कठोर किनारे' और 'तन्त्र' ने दल के युवा सदस्यों की सोच को प्रभावित किया।